॥ॐ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

॥श्री गणेशाय नमः॥

श्री भतृहरि
कृत
नीति शतक

विषय-सूची

मंगलाचरण 3

विद्वत्प्रशंसा..... 7

मान शौर्य प्रशंसा..... 12

द्रव्य प्रशंसा 15

सज्जन प्रशंसा 21

परोपकारी प्रशंसा 24

धैर्य प्रशंसा 28

देव प्रशंसा..... 30

कर्म प्रशंसा 32

मंगलाचरण

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्र मूर्तये ।
स्वानुभूत्येकसाराय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

सभी दिशाओं और भूत भविष्य, वर्तमानादि कालों में अनवच्छिन्न, अनन्त, चैतन्यमात्र मूर्ती वाले, अपने अनुभव से जानने योग्य, शान्त स्वरूप एवं तेजोमय परमात्मा को नमस्कार है। ॥१॥

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥२॥

मैं सदा जिसका चितन करता रहता हूँ, वह मुझसे विरक्त होकर अन्य पुरुष की कामना करती है, और वह अन्य पुरुष किसी अन्य स्त्री की कामना करता है तथा वह अन्य स्त्री मुझसे प्रीति करती है। अतएव मेरी स्त्री को, उस अन्य पुरुष को मुझे चाहने वाली उस अन्य स्त्री को, मुझे और उस कामदेव को भी धिक्कार है। ॥२॥

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदूर्वीदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥३॥

अज्ञानी पुरुष को सरलता से प्रसन्न किया जा सकता है, ज्ञानी पुरुष का प्रसन्न करना उससे भी सुखसाध्य है। परन्तु जो न ज्ञानी है, न अज्ञानी, उसे ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता ॥३॥

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरेवक्त्रदंष्ट्रांतरात्
समुद्रमपि सन्तरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।

भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥४॥

मगर के दाढ़ों में दबी हुई मणि चाहे निकाली जा सके, चाहे उन्नत लहरों से उलझते हुए गहन समुद्र को तैर कर पार किया जा सके और चाहे क्रुद्ध हुए सर्प को पकड़ कर सिर पर धारण किया जा सके, परन्तु मूर्ख पुरुष के किसी वस्तु पर जमे हुए मन को वहाँ से हटाना अत्यंत कठिन है ॥४॥

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिवेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासादितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्ख जनचित्तमाराधयेत् ॥५॥

यत्न करने पर चाहे बालू से तेल निकाल लिया जाय, चाहे प्यासा मनुष्य मृगतृष्णा के जल से अपनी प्यास को बुझा ले और चाहे ढूढने पर खरगोश का सींग भी मिल जाय, परन्तु किसी वस्तु पर टिके हुए सूख मनुष्य के मन को उस वस्तु से हटाना असंभव है। ॥५॥

व्यालं बालमृणाजतन्तुभिरसौ रोद्धं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणिञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते ।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितु क्षाराम्बुधेरीहते
नेतु वाञ्छतियः खलांपथिसतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ॥६॥

जो पुरुष अपने सुधामय वचनों के उपदेश से दुष्टों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करना चाहता है, वह मानों कमल की बाल मृणाल से हाथी को बाँधना, सरसों की पुष्प-पंखुड़ी से हीरे में छेद करना और खारी समुद्र के जल को मधु की बूंदों से मीठा करना चाहता है। ॥६॥

स्वायत्तमेकांत गुणं विधात्रा विनिमतंछादनमज्ञतायाः ।
विशेषतःसर्व विदांसमाजे विभूषणंमौनमपण्डितानाम् ॥७॥

विधाता द्वारा निर्मित मौन में अनेक गुण हैं। इसे किसी से माँगने की आवश्यकता नहीं होती, जो चाहे इस स्वाधीन रहने वाली वस्तु को कार्य में ला सकता है । मुर्खता के लिए ढक्कन स्वरूप यह मौन विद्वत्समाज में मूर्खों के लिए आभूषण स्वरूप ही होता है। ॥७॥

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतम्
तदा मूखोंऽस्मोति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥८॥

जब मुझे किंचित् ज्ञान होने लगा तब मैं हाथी के समान मदोन्मत्त होकर अपने मन में सोचने लगा कि मैं सर्वज्ञ हूँ । परन्तु जब ज्ञानी जनों के संग से कुछ यथार्थ ज्ञान हुआ, तब मेरा वह गर्व ऐसे उतर गया, जैसे रोगी का ज्वर उतर जाता है, तभी मुझे अपने मूर्ख होने की प्रतीति हुई। ॥८॥

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्ने विगन्धि जुगुप्सित
निरुपमरस प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम् ।
सुरपतिमपि श्वा पाश्र्वस्थं विलोक्य न शङ्कते
न हि गणपति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् ॥९॥

जब कृमियों से युक्त, लार से क्लिन्न, दुर्गन्धित, घृणित, रसहीन तथा माँसहीन मानव-अस्थि को कुत्ता प्रीतिपूर्वक चबाता हुआ पाश्र्व में स्थित इन्द्र की भी शंका नहीं मानता तो इससे यही प्रकट होता है कि क्षुद्र जीव जिस वस्तु को ग्रहण कर लेता है उसके अवगुण को नहीं देखता। ॥९॥

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपपिशिरस्कः क्षितिधरं
महीधादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्ग यं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥१०॥

गंगा भी स्वर्ग से पहले शिवजी के शिर पर, फिर वहाँ से हिमगिरि पर और वहाँ से पृथिवी पर गिर कर समुद्र में चली गई। इस प्रकार उसके नीचे गिरते चले जाने से यह सिद्ध होता है कि विवेक से भ्रष्ट हुए पुरुष भी ऐसी ही सैकड़ों अधोगतियों को प्राप्त होते हैं। ॥१०॥

शक्यो वारयितु जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदा दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहेश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैविषम्
सर्वस्यौषधमस्तिशास्त्रविहितं मूर्खस्यनास्त्यौषधम् ॥११॥

अग्नि का निवारण जल से होता है । धूप का छत्र से, मदमत्त हाथी का अकुश से, बैल और गधा डंडे से तथा रोग का अनेक प्रकार की औषधियों से और विष का विविध मन्त्रादि के प्रयोगों से निवारण होता है । इस प्रकार शास्त्रों में सभी की औषधि बताई है, परन्तु मूर्खता के लिए कोई औषधि नहीं हो सकती। ॥११॥

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनःसाक्षात्पशुःपुच्छविषाणहीनः।
तृणन्नखादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयंपरमंपशूनाम्॥१२॥

जो मनुष्य साहित्य, संगीत और कला से विहीन हैं वे पूँछ और सींग से रहित साक्षात् पशु ही हैं। परन्तु यह घास न खाकर जीवित रहते हैं, इसे पशुओं का परम सौभाग्य ही सम झना चाहिए। ॥१२॥

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभुतामनुष्यरूपेणमृगाश्चरन्ति ॥१३॥

जिनमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील और गुण का अभाव है, वे मृत्युलोक में पृथिवी पर भारम्प होकर मनुष्य रूप में मृग के समान विचरण करते हैं। ॥१३॥

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥१४॥

निर्जन पर्वतों पर वनचरों के साथ विचरण करना अच्छा है, परन्तु मूखों के साथ इन्द्र के भवन में रहना भी ठीक नहीं है। ॥१४॥

विद्वत्प्रशंसा

शास्त्रोपस्कृत शब्द सुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोनिर्धनाः।
तज्जाड्य' वसुधाधिपस्य सुधियस्त्वर्थं विनापीश्वराः।
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षकाहिमणयो यैरर्घतःपातिताः ॥१५॥

शास्त्रों के श्रेष्ठ शब्दों से विभूषित वाणी एवं शिष्यों के उपदेश में उपयोगी वाक्यों वाले विख्यात कवियों का निर्धन रहकर जिस राज्य में निवास हो, वह उस राजा की अयोग्यता का सूचक है। क्योंकि विद्वान् कवि तो निर्धन होते हुए भी सर्वत्र पूजनीय और सर्व समर्थ होते हैं। रत्नों के मूल्य को यथार्थ से कम परखने वाला पारखी ही निन्दनीय हो सकता है, रत्न नहीं हो सकते। ॥१५॥

हर्तु यति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा
ह्यार्थिभ्यःप्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धि पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधन विद्याख्यमन्तर्धनम्
येषां तान्प्रति मानुमुज्झत नृपाः कस्तैः सहस्पर्धते ॥१६॥

विद्या रूप गुप्त धन को चोर नहीं देख सकता और वह धन सदा श्रेय की ही वृद्धि करता है। याचकों को देने पर भी बढ़ता और प्रलय होने पर भी नष्ट नहीं होता। हे नृपगण ! उन महाकवियों के प्रति अभिमान न करो, उनसे स्पर्धा करने वाला ही कौन है? ॥१६॥

अधिगतपरमार्थान्पण्डितान्मावमस्था-
स्तृणमिव लघुलक्ष्मीनँव तान्संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां ।
न भवति विसतन्तुवरणं वारणानाम् ॥१७॥

परमार्थ के ज्ञाता पंडितों का अपमान न करो, क्योंकि तृण के समान तुच्छ लक्ष्मी द्वारा उनका वशीभूत होना वैसे ही संभव नहीं है, जैसे कि कमलनाल के तन्तु द्वारा नवीन मद के स्राव वाले और श्याम गण्डस्थल वाले हाथी को रोकना असम्भव है ॥१७॥

अम्भोजिनीवनविहारविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ।
न त्वस्य दुग्ध-जलभेदविधौप्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौसमर्थः ॥१८॥

यदि विधाता क्रुद्ध हो जाय तो वह कमलिनी वन में विलास करते हुए हंस को भले ही रोक दे, परन्तु उसके दूध और जल को पृथक्-पृथक् कर देने वाले चतुराई युक्त गुण को कोन छीन सकता है ? ॥१८॥

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजा
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सतत वाग्भूषणं भूषणम् ॥१६॥

केयूर और चन्द्रमा के समान उज्वल मोतियों के हार धारण करने, स्नान और उबटन करने तथा केशों में पुष्प धारण करने से भी ऐसी शोभा नहीं हो सकती, जैसी कि संस्कार युक्त अलंकृत वाणी से होती है। क्योंकि अलंकारों का तो नाश हो जाता है, परन्तु वाणी रूपी अलंकार का जीवन-पर्यन्त नाश नहीं होता ॥१६॥

विद्या नाम नरस्य रूपमधिक प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनःपशुः॥२०॥

विद्या ही मनुष्य का सुन्दर रूप और गुप्त धन है, विद्या ही भोग, यश और सुख को प्राप्त कराने वाली है, विद्या ही गुरुओं की भी गुरु है, विद्या ही विदेश-गमन में बन्धु स्वरूप होती है, विद्या ही परा देवता है और विद्या ही राजाओं के द्वारा भी पूजी जाती है, धन नहीं पूजा जाता। इसलिए विद्याविहीन मनुष्य पशु ही है। ॥२०॥

क्षान्तिश्चेत्कवचेनकिं किंमरिभिःक्रोधोऽस्ति चेदेहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृदिव्योषधैः किं फलम् ।
किं सपैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैवद्याऽनवद्य यदि
व्रीडा चेत्किमु भूषणैःसुकविता यद्यपि राज्येन किम् ॥२१॥

यदि क्षमा है तो कवच का क्या प्रयोजन ? यदि क्रोध है तो शत्र की क्या आवश्यकता ? यदि जाति है तो अग्नि की क्या अपेक्षा ? यदि सुहृद् हैं तो दिव्य औषधियों का क्या लाभ ? यदि साथ में दुर्जन हो तो सर्प भी क्या है? यदि विद्या धन है तो अन्य धन किस काम का ? यदि लज्जा है तो आभूषणों से क्या प्रयोजन है ? और यदि श्रेष्ठ कविता है तो राज्य भी क्या है ? ॥२१॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्य सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धृष्टता
ये चैवं पुरुषाःकलासु कुशलास्तेष्वेव लोके स्थितिः॥२२॥

स्वजनों पर उदारता, परिजनों पर दया, दुर्जनों से शठता, साधुओं से प्रीति, राजपुरुषों से नीति, विद्वानों से सरलता, शत्रुओं से शूरता, गुरुजनों से

सहनशीलता, स्त्रियों से धृष्टता आदि लौकिक व्यवहार में कुशल पुरुषों से ही लोक की स्थिति है। ॥२२॥

जाडयं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम् ।।२३।।

सज्जनों की संगति जड़ता को दूर करती है, वाणी को सत्य से परिपूर्ण करती है, मान की वृद्धि करती है, पापों को नष्ट करती है , चित्त को प्रसन्न करती है और सब दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है। कहो, वह मनुष्य के हितार्थ क्या नहीं करती ? ॥२३॥

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति तेषां यशः काये जरामरणजे भयम् ॥२४॥

श्रेष्ठ कर्म वाले और सभी रसों में सिद्ध वह कवीश्वर ही सर्व विजेता हैं, जिन्हें यश, कोया, वृद्धावस्था और मृत्यु का भी भय नहीं है ॥२४॥

सूनुःसच्चरितःसती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः
स्निग्धं मित्रमवञ्चकःपरिजनो निःक्लेशलेशमनः।
आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ सम्प्राप्यते देहिनाम् ॥२५॥

सच्चरित्र पुत्र, पतिव्रता पत्नी, प्रसन्न मुख स्वामी, स्नेही मित्र, अवंचक परिजन, क्लेश-रहित मन, रुचिर आकृति, स्थिर वैभव, विद्या से सुशोभित मुख यह सब परमात्मा की प्रसन्नता से ही शरीरधारियों को प्राप्त होते हैं। ॥२५॥

प्राणाघातान्निवृत्तिःपरधनहरणे संयमः सत्यवाक्य

काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावःपरेषाम्।
तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयःसर्व भूतानुकम्पा
सामान्य सर्व शास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेयसामेष पन्था ॥२६॥

जीवों की हिंसा न करना, पराये धन को न हरना, सत्य बोलना, पर्वकाल में यथाशक्ति दान करना, युवतियों की कथा में मौन रहना, तृष्णा को तोड़ना, गुरुजनों के प्रति विनय भाव रखना, सब जीवों पर दया करना आदि सर्वशास्त्रों द्वारा बताया हुआ कल्याण का मार्ग है।॥२६॥

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरन्तिम मध्याः।
विघ्नै पुनः पुनरपि पूतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥२७॥

निम्न श्रेणी के पुरुष विघ्न-भय से कार्यारम्भ नहीं करते, मध्यम श्रेणी के पुरुष कार्यारम्भ कर देते हैं और विघ्न होने पर मध्य में ही उसे छोड़ देते हैं, परन्तु उत्तम श्रेणी के पुरुष विघ्नों के कारण बार-बार संतप्त होने पर भी उसे नहीं छोड़ते, अपितु पूर्ण करके ही रहते हैं। ॥२७॥

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्ऽप्यसुकरं
त्वसन्तो नाभ्यार्था: सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
विपद्यच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्ट विषममसिधाराब्रतमिदम् ॥२८॥

श्रेष्ठ पुरुष न्याय-प्रिय होते हैं, वे घोर विपत्ति में भी अनुचित कार्य नहीं करते। दृष्ट पुरुष से या अल्पधन वाले सुहृद से धन की याचना नहीं करते। प्राण भले ही चले जाँय परन्तु वे अपने गौरव का ह्रास नहीं होने देते, यह समझ में नहीं आता कि तलवार की धार पर चलने के समान यह कठोर व्रत उन्हें किसने सिखाया है ? ॥२८॥

मान शौर्य प्रशंसा

क्षत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपिकष्टां
दशामापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ।
मत्तेभेन्द्र विभिन्नकुम्भपिशितग्रासैक बद्धस्पृहः
किंजीर्णतृणमत्तिमान महतामग्रेसरः केसरी ॥२९॥

क्षुधा से कृश शरीर, शिथिल प्रायः जरावस्था के कारण बलहीन और कष्टमय दशा को प्राप्त हुआ सिंह तेज-रहित होने पर भी मत्त गजेन्द्र के मस्तक का भक्षण करने की इच्छा रख कर कभी शुष्क और जीर्ण घास को खा सकता है? ॥२९॥

स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं, निर्मां समप्यस्थिकं
श्वालब्ध्वा परितोषमेति न च तत्तस्य क्षुधाशान्तये।
सिहो जम्बुकमङ्कागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विषं
सर्वः कृच्छ्रगतोपि वाञ्छतिजन सत्वाप्ररूपंफलम् ॥३०॥

स्वल्प स्नायु, चर्बी आदि तथा मांस-रहित अस्थि को प्राप्त करके प्रसन्न तो होता है, परन्तु उससे उसकी भूख शान्त नहीं हो सकती। सिंह भी पास आये हुए सियार को छोड़ कर हाथी का ही वध करता है। इस प्रकार कष्टमय दशा को प्राप्त होकर भी सब जीव अपनी शक्ति के अनुसार ही फल प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। ॥३०॥

लांगूलचालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य बदनोदरदर्शनञ्च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु
धीर विलोकयति चाटुशतैश्च भक्त ॥३१॥

कुत्ता भोजनदाता के आगे पूँछ हिलाकर और भूमि पर लोट-पोट होकर अपनी दीनता प्रदर्शित करता है, परन्तु हाथी अपने भोजनदाता को गंभीरता से देख कर सैकड़ों वार मनाने पर ही भोजन करता है। ॥३१॥

परिर्वातनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥३२॥

इस परिवर्तनशील संसार में मरण को कौन नहीं प्राप्त होता और कौन नहीं जन्म लेता ? परन्तु जिसके द्वारा वंश की वृद्धि हो, उसी का जन्म लेना सार्थक है। ॥३२॥

कुसुमस्तवकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशार्येत वनेऽथवा ॥३३॥

पुष्पों के गुच्छे के समान मनस्वी पुरुषों की दो गतियाँ ही हैं-सब के सिर पर प्रतिष्ठित होना अथवा वन में ही मुरझा मुझ कर नष्ट हो जाना है। ॥३३॥

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः
पञ्चषास्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते।
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ
भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षाविशेषाकृतिः ॥३४॥

आकाश में बृहस्पति और उसके समान तेजस्वी पाँच, छः ग्रह और भी हैं, परन्तु अपने विशेष पराक्रम में रुचि रखने वाला सिर मात्र शेष राहू उनसे वैर न करके परम तेजस्वी सूर्य चन्द्र को ही (क्रमशः) पूणिमा और अमावस के समय ग्रास करता है। ॥३४॥

वहति भुवनश्रेणि शेषः फणफलकस्थितां
कमठपतिना मध्येपृष्ठ सदा स विधार्यते ।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-

दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥३५॥

शेष नाग अपने फण पर ही चौदह भुवनो को धारण किये रहते हैं, परन्तु कच्छप ने उन शेष नाग को भी अपनी पीठ पर धारण कर रखा है। वह कच्छप भी समुद्र की गोद में अनादर पूर्वक धारणकिया हुआ है। अहो ! महान् पुरुषों के चरित्र की महिमा भी असीमित होती है। ॥३५॥

वरं प्राणोच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश
प्रहारैरुद्गच्छबहुल दहनोद्गारगुरुभिः ।
तुषाराद्रे सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे
न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ॥३६॥

अग्नि की असह्य ज्वाला वाले वज्र के इन्द्र द्वारा प्रहार करने से हिमालय के पुत्र मैनाक के परों का काटना अच्छा था, परन्तु यह अच्छा नहीं था कि उसने अपने पिता को संकट ग्रस्त छोड़ कर समुद्र के आश्रय में अपनी प्राण-रक्षा की। ॥३६॥

यदचेतनोऽपिपादस्पृष्टःप्रज्वलति सवितुरिनकान्तः ।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ॥३७॥

सूर्यकान्त मणि अचेतन होने पर सूर्य की रश्मियों के ताप से प्रज्वलित हो जाती है तो सचेतन तेजस्वी पुरुष दूसरों के द्वारा किये जाने वाले निरादर को कैसे सहन कर सकता है ? ॥३७॥

सिंहःशिशुरपिनिपततिमदमलिनकपोलभित्तिषुगजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्ववतां न खलु वयस्ते जसा हेतुः ॥३८॥

सिंह का शिशु भी मदोन्मत्त हाथी पर आक्रमण कर देता है, क्योंकि शक्तिशालियों का स्वभाव ही ऐसा होता है । तेजस्विता को प्रदशित करने में वय बाधा का कारण कदापि नहीं बन सकती। ॥३८॥

द्रव्य प्रशंसा

जातिर्यातु रसातलं गुण गणस्तत्राप्यधो गच्छतात्
शालं शैलतटात्पतत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज़माशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनकेन बिनागुणास्तृणलवप्रायाः समस्ताइमे ॥३९॥

जाति चाहे रसातल में क्यों न चली जाय, श्रेष्ठ गुणगण भी अधोगामी क्यों न हो जाँय, शीलता पर्वत से शिला के पतित होने के समान क्यों न गिर जाय, परिवारीजन अग्नि में क्यों न भस्म हो जाँय, शत्रुरूपी शुरता पर वज्रपात क्यों न हो जाय, परन्तु हमें तो धन से ही प्रयोजन है, क्योंकि धन के बिना सभी गुण तृण के तुल्य ही हैं। ॥३९॥

तानोन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥१०॥

वही इन्द्रियाँ हैं, वही नाम है, वही अकुंठित बुद्धि है, वही वाणी है, फिर भी केसी अद्भुत बात है कि धन के बिना मनुष्य क्षणभर में ही कुछ का कुछ हो जाता है। ॥४०॥

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥४१॥

जिसके पास धन है, वही पुरुष कुलीन है, वही पण्डित है, वही विद्वान् और गुणज्ञ है, वही वक्ता और वही दर्शनीय है। अभिप्राय यह है कि सभी गुण स्वर्णरूपी धन के आश्रित हैं ॥४१॥

दौर्यन्त्यान्नृपतिविनश्यतियतिःसङ्गात्सुतोलालनाद् विप्रोऽनध्ययनात्कुलं
कुतनयाच्छीले खलोपासनात् ।
ह्रीर्मद्यादानवेक्षणादपिकृषि :स्नेहः प्रवासाश्रया मैत्री
चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥४२॥

बुरे मन्त्रियों से राजा का, कुसंगति से योगी पुरुष का, लाड़ से पुत्र का, अध्ययन न करने से ब्राह्मण का, कुपुत्र से कुल का और खलों की सेवा से शील का नाश होजाता है। ॥४२॥

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य
यो न ददाति न भङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥४३॥

धन की तीन गति हैं—दान, भोग और नाश। धन का दान या भोग न किया जाय तो उसकी तीसरी गति ही हुआ करती है। ॥४३॥

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषुजना ॥४४॥

शान पर खराद किया हुआ मणि, शस्त्रों से आहत समर विजयी, मद का स्राव करता हुआ हाथी, शरद ऋतु में किंचित सूखी हुई नदी, कला से शेष चन्द्रमा, कामकेलि में मर्दिता बालवनिता और शुभकर्म में व्यय करके निर्धन हुआ राजा, इनकी शोभा कृशता में भी होती है। ॥४४॥

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवांना प्रसृतये
स पश्चात्सम्पूर्णो गणयति धरित्रीं तृणसमाम्।।
अतश्चानैकान्त्याद् गुरुलघुतयार्थषु
धनिनामवस्था वस्तूनिप्रथयतिचसङ्कोचयति च ॥४५॥

दरिद्र रहने पर जो मनुष्य एक अंजुली मात्र जौ की कामना करता है, वही धनवान होने पर सम्पूर्ण पृथिवी को तृण के समान समझता है । इस प्रकार यह दोनों अवस्थाएँ मनुष्यों को छोटा या बड़ा बना देतीं और वस्तुओं का विस्तार और संकोच किया करती हैं । ॥४५॥

राजन्दधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां तेनाद्य
वत्समिव लोकममुम्पुषाण।
तस्मिश्च सम्यगनिशं परिपुष्यमाणे
नानाफलं फलति कल्पलतेव भूमिः ॥४६॥

हे राजन् ! यदि पृथिवी रूपी गाय का दोहन करना हो तो प्रजा का पालन बछडे के समान करो । क्योंकि भले प्रकार पालन की हुई पृथिवी कल्पवृक्ष के समान फल देने वाली होती है। ॥४६॥

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ।।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा
च वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥४७॥

कहीं सत्य, कहीं झूठ, कहीं कठोर, कहीं मधुर बोलने वाली, कहीं घातक, कहीं दयालु, कहीं कृपण, कहीं उदार, कहीं प्रचुर धन का व्यय करने वाली और कहीं अधिक धन-संचय करने वाली यह राजनीति वेश्या के समान अनेक रूप वाली होती हैं ॥४७॥

विद्या कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणञ्च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥१८॥

विद्या, कीर्ति, ब्राह्मणों का पालन, दान देना, भोग करना और मित्र की रक्षा, जिसमें यह छः गुण नहीं, उस राजा के आश्रय से क्या लाभ है ? ॥४८॥

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोतिमरुस्थलेऽपिनितरां मेरौततोनाधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्ति वृथामाकृथा
कूपेपश्य पयोनिधीवविघटो गृहणाति तुल्य जलम् ॥८९॥

विधाता ने भाग्य में अल्प या अधिक जितना भी धन लिखा है, वह तो उसे मरुस्थल में भी प्राप्त होता ही है और उससे अधिक सुमेरु पर्वत पर जाने से भी नहीं मिल सकता। इसलिए धैर्य पूर्वक जो है उसी पर सन्तोष करो और किसी धनवान के समक्ष दीनता व्यक्त न करो । देखो, घड़े को कूप में डालो या समुद्र में, जल तो एक समान ही भरेगा। ॥४९॥

त्वमेव चाय काधारोऽसोति केषां न गोचरः।
किमभ्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्ति पतीक्षसे ॥५०॥

हे मघवर ! यह किसे ज्ञात नहीं कि हम पपीहों के आधार तुम्हीं हो, तो फिर तुम हमारे दीनता भरे शब्दों की ही प्रतीक्षा क्यों करते हो ? ॥५०॥

रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयतां
मम्भोदा बहवोहि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।
केचिद्वृष्टिभिराद्रयन्ति वसुधांगर्जन्तिकेचिद् वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रहि दीनंवचः ॥५१॥

अरे पपीहा ! सावधान मन से मेरा वचन सुन । आकाश में अनेक मेघ हैं, परन्तु सभी समान नहीं हैं। उनमें से कुछ तो जल की वर्षा करके पृथिवी की तृप्ति करते हैं और कुछ वृथा ही गर्जन करते रहते हैं । इसलिए तू जिस-जिस को देखे उस-उस के समक्ष ही दोन वचनों को न बोला कर। ॥५१॥

अकरुणत्वमकारण विग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा ।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥५२॥

करुणाहीनता, अकारण विग्रह, परधन और परनारी की कामना, स्वजनों और मित्रों के प्रति असहिष्णुता, दुरात्माओं के यह स्वभाव सिद्ध लक्षण हैं। ॥५२॥

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ॥५३॥

दुर्जन विद्यावान है तो भी त्याग देने योग्य है। क्या मणि से अलंकृत हुए सर्प में भयंकरता नहीं होती ॥५३॥

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौदम्भः शुचौ कैतवं
शूरे निघृणता मुनौ विमतितार्दैन्यं प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तव्यशक्तिः स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैनङ्कितः ॥५४॥

लज्जावानों में जड़ता, व्रत करने वालों में दम्भ पवित्र चित्त वालों में कपट वीरों में दयाहीनता, मुनियों में बुद्धि राहित्य, मधुर भाषियों में दैन्य, तेजस्वियों में अवलिप्तता, वक्ताओं में मुखरता और स्थिर चित्त वालों में आलस्य का होना कह कर दुर्जन पुरुष, गुणियों में ऐसा कौन-सा गुण है जिसमें दोष न निकालते हों। ॥५४॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेनकिम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किंमण्डनैः
सद्विद्यायदिकिं धनैरपयशो यद्यम्तिकं मृत्युना ॥५५॥

लोभ है तो किसी अन्य दुर्गुण की क्या आवश्यकता ? यदि पशुता है तो पापों का क्या प्रयोजन ? यदि सत्य है तो तप से क्या लाभ ? यदि मन में पवित्रता है तो तीर्थों में जाने का क्या उद्देश्य ? यदि सौजन्य है तो अन्य

गुणों से क्या कार्य ? यदि यश है तो अन्य भूषण से क्या अपेक्षा ? यदि सद् विद्या है। तो धन का क्या अभिप्राय ? यदि अपयश है तो मृत्यु की क्या कामना ? ॥५५॥

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ।
प्रभुर्घनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ॥५६॥

दिन का धूमिल चन्द्र, यौवनहीना नारी, कमलविहीन सरोवर, बुद्धिहीन सुन्दर पुरुष, कृपण स्वामी, दुर्गति-ग्रस्त सज्जन और राजभवन में दुष्ट मनुष्य का वास, यह सातों काँटे के समान हैं। ॥५६॥

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भुभुजाम् ।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥५७॥

अत्यन्त क्रोधी राजाओं का आत्मीय कोई नहीं होता। क्योकिं अग्नि आहुति देने वाले को भी स्पर्श करने पर दग्ध कर देती है। ॥५७॥

मौनान्मूकः प्रवचनपटुवार्तुलो जल्पको वा
धृष्टः पार्श्व पसति च सदा परतश्चापगल्भः।
क्षान्त्या भीरुर्यादी न सहतेप्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥५८॥

यदि सेवक मौन रहे तो गूंगा, वाक्पटु हो तो बकवादी, समीप रहे तो ढीठ और दूर रहे तो मूर्ख कहलाता है। यदि क्षमाशील हो तो उसे भीरु और

असहनशील हो तो कुलहीन कहते हैं। अभिप्राय यह है कि सेवा धर्म अत्यन्त गहन है, जो कि योगियों को भी अगम्य होता है। ॥५८॥

उद्भासिताखिलखलस्यविशृङ्खलस्य प्राग्जातविस्मृतनिजाधर्मकर्मवृत्तेः ।
दैवा वाप्तनिभवस्य गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतैः सुखमास्यते कैः ॥५६॥

जिस की दुष्टता का ज्ञान सभी को होगया हो, जिसके पूर्वजन्म के नीचकर्म इस जन्म में प्रकट हो रहे हों, जो देव वशात् धनवान होगया हो और जिसे श्रेष्ठ गुणों से द्वेष हो, ऐसे दुष्ट मनुष्य के सामने जाकर कौन सुख प्राप्त कर सकता है। ॥५९॥

सज्जन प्रशंसा

आरम्भुभुगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वीपुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्ध पराद्धभिन्ना छायेव मैत्रीखलसज्जनानाम् ॥६०॥

जैसे दिवस के प्रारम्भ में घनी छाया रहती है और घोरे धीरे घटती जाती है, फिर दिवस के उत्तरार्ध के अन्त में छाया स्वल्प रहती और धीरे-धीरे बढ़ती जाती है, वैसे ही दुष्ट और सज्जन की मित्रता होती है। ॥६०॥

मृगमीनसज्जनानांतृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणमेव वैरिणो जगति ॥६१॥

मृग और मछली क्रमशः घास खाकर और जल पीकर रहते हैं, तो भी शिकारी और मछेरे उससे द्वेष रखते हैं। वैसे ही सज्जन पुरुषों से दुर्जन पुरुष अकारण ही वैर रखते हैं। ॥६१॥

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिगुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषित रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥६२॥

सज्जनों के संग की इच्छा, पराये गुणों से प्रेम, गुरुजनों के समक्ष नम्रता, विद्या में अनुराग, निज पत्नी से प्रीति, लोक निन्दा से भय, शिव की भक्ति, इन्द्रियदमन की शक्ति रखना और दुष्टों की संगति का परित्याग करना, यह श्रेष्ठ गुण जिनमें हैं, उन सज्जनों को नमस्कार। ॥६२॥

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥६३॥

विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में क्षमा-भाव, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में पराक्रम, यश में अभिरुचि, शास्त्र-श्रवण में चित, महात्मा पुरुषों के यह स्वाभाविक गुण हैं।॥६३॥

प्रदानं प्रच्छन्न गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः
सतां केनोद्दिष्ट विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥६४॥

दान को गोपनीय रखना, गृह पर आगत का स्वागत-सत्कार करना, परोपकार करके चुप रहना, किसी अन्य द्वारा किये हुए उपकार को सभा में कहना, धन प्राप्त होने पर गर्व न करना, दूसरों की चर्चा में निन्दा-भाव न लाना यह तलवार की धार पर चलने के समान कठोर व्रत किसने बताया है ? ॥६४॥

करे श्लाध्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोवीर्यमतुलम् ।

हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतं च श्रवणयो
विनाऽप्यैश्वर्यं प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥६५॥

हाथों की प्रशंसा दान में है, सिर की शोभा गुरुजन के चरणों में प्रणाम करने में है, मुख की शोभा सत्य बोलने में और भुजाओं की शोभा अपार बल प्रदर्शित करने में है। हृदय की श्लाघा स्वच्छता में और कानों की शोभा शास्त्र-श्रवण में है, सज्जनों के लिए यह सब ऐश्वर्य और महान भूषण हैं। ॥६५॥

सम्पत्सु महतां चित्तं भवेदुत्पलकोमलम् ।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम् ॥६६॥

महात्माओं का चित्त सम्पत्ति मिलने पर कमल के समान कोमल तथा आपत्ति पड़ने पर पर्वत की शिला के समान अत्यन्त कठोर होता है। ॥६६॥

सन्तप्तायसिसंस्थितस्यपयसोनामापिनाज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनोपत्रस्थितं राजते।
स्वात्यांसागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मोकि कंजायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥६७॥

तपते हुए लोहे पर पड़ने वाले जल का नाम भी नहीं जाना जाता अर्थात् चिन्ह भी शेष नहीं रहता, परन्तु वही जल कमल के पत्तों पर मोती के आकार का हो जाता है। यदि वही जल स्वाति नक्षत्र में समुद्र की शक्तियों पर पड़ जाय तो मोती बन जाता है। इससे यही विदित होता है कि शरीर-धारियों के अधम, मध्यम और उतम गुण संसर्ग से ही उत्पन्न होते हैं। ॥६७॥

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यद्एतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥६८॥

जो अपने श्रेष्ठ आचरण से पिता को प्रसन्न रखता है, वही पुत्र है, जो अपने पति का हित-चिन्तन करती है, वही पत्नी है। और सुख-दुःख दोनों अवस्थाओं में समान रहे, वही सच्चा मित्र है, इन तीनों की प्राप्ति पुण्यात्मा पुरुषों को ही होती है। ॥६८॥

एको देवः केशवो वा शिवो वा एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ।
एको वासः पत्तने वा वने वा एको नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६९॥

आराध्य देव एक हो-केशव हो अथवा शिव, मित्र भी एक ही हो—राजा हो अथवा योगी। एक ही निवास स्थान हो नगर में अथवा वन में और नारी भी एक ही हो—सुन्दरी हो अथवा गिरि की गुफा हो अर्थात् असुन्दर हो। ॥६६॥

नम्रत्वेनोन्नमन्तःपरगुणकथनै: स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः
स्वार्थान्सम्पादयन्तोविततपृथुतरारम्भयत्नाःपरार्थे ।
क्षान्त्येवाक्षेयूरक्षाक्षपुमुखरमुखान्दुर्जनान्दूषयन्तः
सन्तसाश्चर्यचर्याजगतिबहुमताःकस्यनाभ्यर्चनीयाः॥७०॥

जो नम्र रहकर उन्नति करते हैं, जो पराये गुणों का वर्णन करते हुए अपने गुणों को व्यक्त करते हैं, जो परोपकार करते हुए अपना भी कार्य-साधन करते हैं, जो दुर्जनों की निन्दित और कठोर वाणी से युक्त मुख को क्षमा से ही दूषित करते हैं। इस प्रकार के उन आश्चर्यजनक दिनचर्या वाले सन्त पुरुषों को संसार में पूजनीय कौन नहीं मानता ? ॥७०॥

परोपकारी प्रशंसा

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैनर्वाम्बुभिभू मिविलम्बिनो घना ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥७१॥

जैसे फल लग जाने पर वृक्ष झुक जाते हैं, जैसे नवीन जल से भरे हुए मेघ पृथिवी पर गिरते हैं, वैसे ही समृद्धि को प्राप्त हुए सत्पुरुष भी झुक जाते है। क्योंकि परोपकारियों को स्वभाव ही ऐसा होता है। ॥७१॥

श्रोत्र श्रुतेनैवनकुण्डलेनदानेनपाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभातिकायःकरुणामयानां परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥७२॥

श्रोत्रों की शोभा कुण्डल धारण से नहीं, शास्त्र श्रवण से है, हाथों की शोभा कंकण पहनने से नहीं, दान से है और करुणा परायण पुरुषों की शोभा चन्दन-लेपन से नहीं, वरन परोपकार करने से होती है। ॥७२॥

पापान्निवारयति योजयते हिताय गुह्यं निगूहति गुणान्पुकटीकरोति।
आपद्गतञ्च न जहाति ददाति काले समित्रलक्षणमिदं पूवदन्ति सन्तः॥७३॥

अपने मित्र के पाप कर्मों का निवारण करना, हित के कार्यों में युक्त करना, उसकी गुप्त बातों को छिपाये रखना, उसके गुणों को प्रकट करना, उसका साथ कभी न छोड़ना और समय उपस्थित होने पर उसे सहायता करना, सन्तजनों ने यह सब लक्षण श्रेष्ठ मित्र के बताये हैं ॥७३॥

पद्माकर दिनकरो विकचं करोति चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यथितो जलधरोऽपि जलं ददाति सन्तः स्वयं परिहितेषु कृताभियोगाः
॥७४॥

बिना याचना किये ही सूर्य कमलों को खिलाता और चन्द्रमा कुमुदिनी को विकसित करता है। मेघ भी स्वयं ही जल की वर्षा करता है, क्योंकि सत्पुरुष बिना किसी की प्रार्थना के ही परोपकार में तत्पर रहते हैं। ॥७४॥

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेनये ।
तेऽमी मानुषराक्षसः परहित स्वार्थाय निघ्नन्ति ये

ये निघ्नन्ति निरर्थक परहितं ते के न जानीमहे ॥७५॥

सज्जन पुरुष अपना कार्य छोड़ कर भी पराये कार्य में तत्पर रहते हैं, इनमें जो सामान्य पुरुष हैं वे अपने कार्य में लगे रह कर पराया हित साधन करते हैं । परन्तु जो अपने लाभ के लिए पराया कार्य बिगाड़ देते हैं, वे मनुष्य होते दुए भी राक्षस हैं और जो अकारण ही किसी दूसरे के कार्य को बिगाड़ देते हैं, उन्हें क्या कहना चाहिए, यह मैं नहीं जानता। ॥७५॥

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेनपयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तु पावकमुन्मनास्तदभवद् दृष्टवा तु मित्रापदं
युक्तं तेनजलेनशाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥७६॥

जल के साथ मिले हुए दुग्ध ने उसे अपने सभी गुण प्रदान करके मैत्री दृढ़ की। फिर जल ने दुग्ध को जलता हुआ देखा तो उसे बचाने के लिए स्वयं को ही अग्नि में होम कर दिया । जल की यह दशा देख कर दूध ने भी अग्नि की ओर प्रयाण कर दिया, तब जल ने अपने शीतल छीटों से मित्र दुग्ध को स्थिर किया और तभी शान्त हो सका। अहो, सज्जन पुरुषों की मित्रता ऐसी ही होती है। ॥७६॥

इतःस्वपिति केशवःकुलमितस्तदीयद्विषामितश्च
शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते ।
इतोऽपि बड़वानलः सह समस्त संवर्तकैरहो
विततमूजितं भरसहञ्च सिन्धोर्वपुः ॥७७॥

समुद्र में एक ओर भगवान् विष्णु शयन करते हैं तो दूसरी ओर उनके शत्रु, एक ओर अपनी रक्षा की आकांक्षा से पर्वतों के समूह सोते हैं तो दूसरी ओर प्रलय काल की सम्वतग्नि को साथ लिए हुए बड़वानल वृद्धि पर है । अहो, समुद्र कैसा महान् बलवान और भारसहन में समर्थ है, इसी प्रकार सज्जन भी होते हैं। ॥७७॥

तृष्णांछिन्धिभजक्षमांजहि मदं पापे रतिमाकृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान्मानयविद्विषोऽप्यनुनयप्रच्छादयस्वान्गुणान्
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥७८॥

तृष्णा का त्याग करो, क्षमा को अपनाओ, अहंकार को छोड़ दो, पाप से चित्त हटाओ, सत्य बोलो, सज्जनों के पदानुयायी बनो, विद्वानों की सेवा करो, मान्य पुरुषों का मान करो,विद्वषी को भी प्रसन्न रखो, अपने गुणों को व्यक्त करो, यह सभी लक्षण सत्पुरुषों के हैं। ॥७८॥

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुण परमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः
॥७९॥

जिनके मन, वचन और काया में पुण्यमय पीयूष भरा है, जिन्होंने परोपकार से त्रिभुवन को प्रसन्न किया है और जिन्होंने दूसरे के अल्प से भी अल्प गुण को पर्वत के समान बढ़ा कर प्रसन्नता प्राप्त की है, ऐसे सन्त पुरुष संसार में कितने हैं ॥७९॥

किं तेन हेमगिरणा रजताद्रिणा वा यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ॥८०॥
स्वर्ण का वह सुमेरु और रजत का वह हिमालय किस काम का, जिसके आश्रय में स्थित वृक्ष सदा वृक्ष ही रहे आते हैं। परन्तु वह मलयाचल ही धन्य है, जहाँ खड़े हुए कंकोल, नीम और कुटज के वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं। ॥८०॥

धैर्य प्रशंसा

रत्नैर्महास्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां बिना न प्रययुर्वीराम न निश्चिार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥८१॥

समुद्र मन्थन के समय देवगण महान् रत्नों को पाकर भी प्रसन्न नहीं हुए, भयंकर विष की प्राप्ति से भयभीत न हुए और जब तक मन्थन न हो गया उस कार्य से नहीं हटे । तात्पर्य यह है कि विद्वान् और धीर पुरुष अभीष्ट की प्राप्ति हुए बिना आरम्भ किये हुए कार्य को नहीं छोड़ते ॥८१॥

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्शयनः
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपिः च शाल्योदनरुचिः।
क्वचित्कन्थाधारी ववचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुखं न च सुखम् ॥८२॥

कभी भूमि पर सोते हैं तो कभी पलंग पर, कभी शाक का आहार करते हैं तो कभी चावल-भात का भक्षण करते हैं, कभी गुदड़ी पहन कर दिन व्यतीत करते हैं तो कभी दिव्य वस्त्र पहनते हैं, इस प्रकार मनस्वी कार्यार्थी जब कार्य करने लगते हैं तो सुख, दुःख में भेद नहीं मानते। ॥८२॥

ऐश्वर्यस्य विभुषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्यपात्रेव्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निवर्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥८३॥

ऐश्वर्य का भूषण सुजनता, शौर्य का भूषण वाक् संयम, ज्ञान की शोभा शान्ति, शास्त्र की शोभा विनय, धन की शोभा सुपात्र को दान, तप की शोभा अक्रोध, प्रभुत्व की शोभा क्षमा, धर्म की शोभा कपट-रहितता और अन्य सभी गुणों का कारण रूप भूषण शील ही है। ॥८३॥

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्माः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्येव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥८४।।

नीति निपुण मनुष्य निन्दा करे या स्तुति, लक्ष्मी आये या चली जाय, मृत्यु आज ही हो अथवा युगान्तर में, परन्तु धीरजवान् पुरुष न्याय मार्ग से पीछे कभी नहीं हटते। ॥८४॥

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोम्लनेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वाऽऽखुर्वीवरस्वयंनि पतितो नक्तं मुखे भोगिनः।
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा
लोकाःपश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौक्षये कारणम् ॥८५॥

जिस पिटारे में बन्द रहने के कारण पीड़ित हुआ सर्प जीवन की आशा का त्याग किये बैठा था, उसकी इन्द्रियाँ क्षुधा से शिथिल हो गई थीं, तभी रात्रि के समय एक चूहे ने उस पिटारे में छेद कर उसके भीतर प्रवेश किया और स्वयं ही सर्प के मुख में जा पड़ा। तब सर्प ने उसका भक्षण कर लिया और प्रसन्न होता हुआ पिटारे से बाहर निकल आया। अहो, देखो मनुष्यों की वृद्धि और क्षय का कारण दैव ही है। ॥८५॥

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥८६॥

जिस पर हाथ के आघात से नीचे की ओर फेंकी हुई गेंद कुछ देर के लिए ऊपर की ओर ही उछलती है, वैसे ही साधुओं की विपत्ति भी अल्पकालीन होती है। ॥८६॥

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महानरिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्य कृत्वा नावसीदति ॥८७॥

मनुष्यों के शरीर में आलस्य ही घोर शत्रु है और उद्योग ही उसका ऐसा बन्धु है, जिसके करने पर कभी दुःख नहीं होता। ॥८७॥

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षोणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्र।
इति विमृशन्तः सन्तः संतप्यन्ते न ते विपदा ॥८८॥

जैसे काटा हुआ वृक्ष काट कर भी पुनः बढ़ने लगता है, वैसे ही क्षीण हुआ चन्द्रमा भी पुनः बढ़ता जाता है। ऐसा जानकर सत्पुरुष संकटकाल में भी कभी दुःखित नहीं होते। ॥८८॥

देव प्रशंसा

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किलहरेरेरावतो वारण ।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद्भग्नः परैः सङ्गरे
तद् व्यक्तं वरमेव देवशरणंधिग्धिवृथा पौरुषम् ॥८९॥

जिस के नेता (मन्त्रदाता) बृहस्पति, वज्र जिसका आयुध, देवगण सैनिक, स्वर्ग दुर्ग और ऐरावते जिसका हाथी है, ऐसे सब प्रकार के ऐश्वर्य और बल से समन्वित होकर भी रण में शत्रु से हारता रहता है, इससे यही मानना होता है कि दैव ही शरण लेने योग्य है और वृथा पौरुष को धिक्कार है। ॥८९॥

कर्मायत्तं फलं पुन्सां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधिया कार्य कर्तव्यं सुविचारतः ॥९०॥

मनुष्य कर्म के अनुसार फल भोगता है और कर्म के अनुसार ही बुद्धि हो जाती है। तो भी समझ सोचकर कार्य करना बुद्धिमान का कर्तव्य है। ॥९०॥

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैःसन्तापिते मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्न सशब्दं शिरः
प्रायोगच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः॥९१॥

गंजा मनुष्य सूर्य के ताप से सिर को बचाने के लिए छायामय तालवृक्ष के नीचे आया और वहां उस वृक्ष से एक बड़ा फल गिरने के कारण उसका सिर फट गया। इस प्रकार भाग्यहीन पुरुष जहाँ-जहाँ जाता है, विपत्ति भी वहीं-वहीं (उसके पीछे पीछे) जाती है। ॥९१॥

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमताञ्चविलोक्यदरिद्रतां विधिरहोबलवानितिमेमतिः ॥९२॥

सूर्य-चन्द्र का राहु के द्वारा ग्रहण, हाथी और सर्प का बन्धन तथा विद्वानों की दरिद्रता को देखकर मैं विधान को ही बलवान समझता हूँ। ॥९२॥

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥९३॥

ब्रह्मा की कैसी मूर्खता है कि वह गुणों के सभी आकार तथा भूमि के अलंकार रूप जिस पुरुष और रत्नादि की रचना करता है उसे क्षणभंगुर ही बनाता है। ॥९३॥

पत्रं नैव यदा करोर विटपे दोषो वसन्तस्य कि
नोलूकोऽप्यबलोकते यदिदिवा सूर्यस्य किंदूषणम् ।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य कि दूषणं
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्माजितु कःक्षमः ॥९४॥

यदि करील के वृक्ष में पत्ते उत्पन्न न हों तो इसमें बसन्त ऋतु का क्या दोष है ? यदि दिन में उल्लू को दिखाई न दे तो इसमें सूर्य का क्या दोष है? यदि चातक के मुख में जल की धारा न पड़े तो इसमें मेघ का क्या दोष है? जो विधाता ने पहले ही ललाट में लिख दिया है, उसको मिटाने में कौन समर्थ होसकता है ? ॥९४॥

कर्म प्रशंसा

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकमैकफलदः।
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किञ्च विधिना
नमस्तत्कर्मभ्या विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥९५।।

हम जिन देवताओं को नमस्कार करते हैं, वे देवता भी विधाता के वश में पड़े हुए हैं। इसलिए हम भी विधाता को नमस्कार करते हैं, जो कि हमारे कर्मों के अनुसार ही फल देता है । जब कर्म के अनुसार ही फल मिलना है, तब हमें देवताओं से और विधाता से ही क्या प्रयोजन? इसलिए उस कर्म को ही नमस्कार करना चाहिए, जिस पर विधाता का भी कोई वश नहीं चल पाता ॥६५॥

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमःकर्मणे ॥६९॥

जिसने ब्रह्माण्ड रूपी पात्र के उदर में सृष्टि रचने के लिए ब्रह्मा को कुम्हार के समान नियुक्त किया, जिसने विष्णु को दश अवतार धारण करने रूपी घोर संकट में डाल दिया, जिसने रुद्र को खप्पर हाथ में लेकर भिक्षा मांगने

के लिए बाध्य किया और जसने सूर्य को आकाश भ्रमण का कार्य सोंपा, उस कर्म को नमस्कार है। ॥१६॥

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शील
विद्याऽपि नैव न च यत्कृतापिसेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलुसञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥९७॥

फल देने में न तो सुन्दर आकृति ही उपयोगी है और न कुल, शील, विद्या अथवा परिश्रमपूर्वक की गई सेवा, वरन् पूर्व जन्म में किये गये तप से सिंचित कर्म ही समय प्राप्त होने पर वृक्ष के समान फल देते हैं। ॥९७॥

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥१८॥

वन, युद्ध, शत्रु, जल, अग्नि और समुद्र में अथवा पर्वत के शिखर पर, सुप्त अवस्था या प्रमत्त और विषम अवस्था में पूर्व जन्म में किये हुए (शुभ) कर्म ही रक्षा किया करते हैं। ॥९८॥

या साधू श्रखलान्करोतिविदुषोमूर्खान्हितान्द्वेषिणः
प्रत्यक्षकुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात्।
तामाराधयसक्रियां भगवतीं भोक्तु फलवाञ्छितं
हे साधो व्यसनैगुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा माकृथाः ॥९९॥

जो सक्रिया दुष्टों को सज्जन, मूख को विद्वान्, शत्रुओं को मित्र, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष और विष को अमृत बनाने में समर्थ है, उसी की आराधना करो। हे साधो ! अनेक गुणों के साधन में श्रम करना व्यर्थ है। ॥९९॥

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्त र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः
॥१००॥

अच्छे या बुरे कर्म करने से पहले विद्वान् पुरुष का कर्तव्य है कि उसके परिणाम पर भले प्रकार विचार कर ले, क्योंकि बिना विचारे शीघ्रता में किये हुए कर्म का फल मरण पर्यन्त काँटे के समान हृदय में दाह करता रहता है। ॥१००॥

स्थाल्यांवैदूर्यमण्यांपचतितिलकणांश्चान्द नैरिन्धनाद्य :
सौवर्गौलङ्गलाग्रै विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः ।
छित्वाकर्पूरखण्डान्वृतिमिहकुरुतेकोद्रवाणां समन्तात्
प्राप्येमां कर्मभूमिचरतिनमनुजोयस्तपोमन्दभाग्यः ॥१०१॥

जो मन्दभागी पुरुष इस कर्म भूमि में जन्म लेकर तपश्चर्या कर्म नहीं करता, वह वैदूर्य मणि से निर्मित स्वर्ण पात्र में मानों चन्दन की लकड़ी जला कर दानों को पकाता है और आक के वृक्ष के मूल का पता लगाने के लिए सोने का हल जोतता तथा कर्पूर के टुकड़ों को काट-काट कर मेढ़ लगाता है। ॥१०१॥

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रुञ्जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्या:कलाःशिक्षतु।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं
नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्यनाशः कुतः ॥१०२॥

चाहे समुद्र में गोता लगावे या सुमेर के शिखर पर चढ़ जाय, चाहे शत्रुओं को जीते और चाहे वाणिज्य, कृषि, सेवा इत्यादि सभी कलाओं में निपुणता प्राप्त करले अथवा पक्षियों के समान आकाश में उड़ने में समर्थ होजाय, तो भी अनहोनी का न होना सम्भव नहीं है। ॥१०२॥

भीमं बनं भवति तस्य पुरं प्रधानं सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य ।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ॥१०३॥

जिसने पूर्वजन्म में बहुत पुण्य किये हैं, उसके लिए भयंकर बन भी श्रेष्ठ नगर बन जाता है, सभी मनुष्य उसके लिए सज्जन हो जाते हैं और यह सम्पूर्ण पृथिवी विपुल धनरत्न से सम्पन्न हो जाती है। ॥१०३॥

को लाभो गुणिसंगमः किममुखं प्रज्ञेतरैः संगतिः
का हानिःसमयच्युतिन पुणता ना धर्मतत्त्वे रतिः।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा काऽनुव्रता कि धनं
विद्याकि सुखमपूगासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥१०४॥

संसार में उत्पन्न होने का क्या लाभ है ? गुणवानों का संग। दुःख क्या है ? मूर्खा की संगति । हानि क्या है ? समय को व्यर्थ व्यतीत करना। निपुणता क्या है ? धर्म में अनुराग रखना। शूर कौन है ? इन्द्रियों को जीतने वाला। प्रियतमा कौन है ? पति व्रता भार्या। धन क्या है ? विद्या । सुख क्या है? परदेश में न जाना । राज्य क्या है ? आज्ञा का पालन होना। ॥१०४॥

मालतीकु सुमस्येव द्वेगती स्तो मनस्विनः।
मूर्धिन वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥१०५॥

मालती के पुष्पों के समान मनस्वी पुरुषों की दो ही गति हैं या तो वे सब के मुकुट होकर रहते हैं या वन में जाकर ही शरीर छोड़ते है। ॥१०५॥

अप्रियवचनदरिद्रै :प्रियवचनाढयं: स्वदारपरितुष्टै: ।
परपरिवादवृत्त, क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥१०६॥

अप्रिय वचन कहने वाले, प्रिय बोलने वाले, अपनी पत्नी से सन्तुष्ट और पर निन्दा से दूर रहने वाले पुरुषों से यह पृथिवी कहीं-कहीं ही विभूषित होती है ॥१०६॥

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिःकुल्यायते तत्क्षणान्मेरुः
स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते ।
ब्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमंशीलंसमुन्मीलति ॥१०७॥

जिसके शरीर में अखिल विश्व का अत्यन्त प्रिय शील प्रतिष्ठित है, उसके लिए अग्नि जल के समान, समुद्र क्षुद्र नदी के समान, सुमेरु अल्प शिला के समान, सिंह मृग के समान, सर्प पुष्पमाला के समान और विष भी पीयूष की वर्षा करने वाला हो जाता है। ॥१०७॥

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणैव परिस्फुरित तेजसा ।।१०८॥

एक ही शूर सम्पूर्ण पृथिवी को पदाक्रान्त करके इस प्रकार वश में कर लेता है, जिस प्रकार कि सूर्य सम्पूर्ण विश्व को अपने प्रकाश से वश में कर लेता है। ॥१०८॥

कथितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्नशक्यते धैर्यगुणाः प्रपाष्टुम।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वहने नधिः शिखायाति कदाचिदेव ॥१०९॥

कैसा भी कष्ट क्यों न आ पड़े, धीरजवान पुरुष धैर्य को नहीं छोड़ता। अग्नि की ज्वाला कितनी भी नीची करदी जाय, परन्त वह ऊपर को ही जाती है। ॥ १०९ ॥

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वामत्यन्त शुद्धहृदयामनु वर्तमानाम् ।
तेजस्विनः सुखमसूनपि सत्यजन्ति सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्
॥११०॥

सत्य व्रतधारी तेजस्वी मनुष्य लज्जा आदि गुणों को उन्पन्न करने वाली, माता के समान पवित्र हृदया, एवं सदैव स्वाधीन रहने वाली अपनी प्रतिज्ञा को कभी नहीं त्यागते, चाहे उनके प्राण ही क्यों न चले जाँय। ॥११०॥

ॐ नीति शतक समाप्त ॐ

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय:।।